छत्तीसगढ़ का प्रयागराज-राजिम: एक ऐतिहासिक पुनरावलोकन

आकाश बाघमारे&डॉ. डी. एन. खुटे

सारांश:-भारत में जो महत्व प्रयागतीर्थ 'प्रयागराज' का है, वही महत्व छत्तीसगढ़ प्रदेश में प्रयागतीर्थ 'राजिम' का है। राजिम ऐतिहासिक एवं पुरातात्विक महत्व का स्थल है ही साथ ही इसे धर्म-नगरी, लोककला संस्कृति का गढ़ कहा जाता है। राजिम महानदी, पैरी व सोंढूर नदी के संगम किनारे अवस्थित है। महानदी अथवा चित्रोत्पला को प्राचीन साहित्य में समस्त पापों का हरण करने वाली परम पुण्यदायिनी कहा गया है। महाभारत के भीष्म पर्व में तथा मत्स्य एवं ब्रह्मपुराण में भी चित्रोत्पला का उल्लेख है। इस नदी के उद्गम के बारे में जो बातेंमिलती है, उसमें कोई संदेह नहीं रह जाता कि यह नाम महानदी के लिए ही प्रयुक्त किया गया था। महानदी जैसे पापनाशिनी में दो अन्य नदियों के संगम के कारण से यह एक परमपुण्य स्थली मानी जाती है। राजिम को धार्मिक तथा सांस्कृतिक केंद्र के रूप में ख्याति प्राप्त है। यहां मंदिरों की बहुलता तथा यहां आयोजित होने वाले उत्सव आदि इस बात की पुष्टि करते प्रतीत होते है।

शब्द कुंजी:- राजिम, प्रयाग, पंचकोशी, राजीवलोचन, पद्मक्षेत्र, शिलालेख, विलासतुंग, कुलेश्वर, तीर्थ।

राजिम छत्तीसगढ़ का प्रसिद्ध धार्मिक स्थल है। यह तीर्थ स्थल रायपुर से लगभग 48 कि.मी. दक्षिण-पूर्व में महानदी, पैरी और सोंढूर नदी के संगम स्थल में बसा है। इसलिए इसे छत्तीसगढ़ का प्रयाग कहा जाता है।[1] राजिम ऐतिहासिक एवं पुरातात्विक महत्व का स्थल है। यहां से प्राप्त अध्ययन से जो निष्कर्ष मिले है वे सब राजिम के ऐतिहासिक तथ्यों को उजागर करते हैं। इससे यह पता चलता है कि राजिम के इतिहास की अंतः प्रकृति राजनैतिक न होकर सांस्कृतिक है। इसके उन्नयन में राजवंशों का ऐश्वर्यशाली एवं विलासतापूर्ण जीवन की झांकी नहीं दिखाई देती अपितु सांस्कृतिक उत्थान का परिचय मिलता है। यह प्राचीन दक्षिण कोसल के दो प्रमुख राजवंशों - शरभपुरियों व सोमवंशियों की राजधानी रही है।[2]छत्तीसगढ़ का प्रयाग कहे जाने वाले राजिम को 'पद्मावतीपुरी', 'पंचकोशी' एवं 'छोटा काशी' के नामों से भी पहचाना जाता है। इस त्रिवेणी संगम के समीप प्राचीन कुलेश्वर महादेव मंदिर, राजीवलोचन मंदिर, सोमेश्वर महादेव का मंदिर एवं महर्षि लोमश ऋषि का आश्रम स्थित है।[3] संगम स्थल पर कुलेश्वर महादेव का मंदिर है यह नदी की मुख्यधारा पर अवस्थित है और नदी के प्रबल प्रवाहो के थपेड़े सहता हुआ भी अडिग खड़ा है। राजिम लोचन कुलेसर घाट, बर रूख में फर फरे तीन सौ साठ।[4]राजिम धार्मिक समन्वय का स्थल था जहां शैव, वैष्णव और शाक्तसंप्रदायों का मिलन हुआ जो यहां के मूर्ति शिल्प से स्पष्ट होता है।[5] यहां पर प्रतिवर्ष माघ पूर्णिमा को वृहद मेला लगता है और पुण्य प्राप्ति हेतु नदी में स्नान किया जाता है।[6] यहां आयोजित होने वाले अर्द्धकुंभमें देश के महान संत शंकराचार्य व हिन्दू धर्म के विशिष्टसंवाहकों के आगमन से यह क्षेत्र और भी अधिक प्रतिष्ठित हो गया है। इस महान धार्मिक क्षेत्र में प्रतिवर्ष फरवरी से मार्च माह (माघ पूर्णिमा से महाशिवरात्रि तक) में एक माह तक प्रसिद्ध मेले का आयोजन होता है जो कि महाशिवरात्रि के दिन अत्यधिक विशाल हो जाता है।[7]

पद्मपुराण से प्राप्त कथा के अनुसार इस क्षेत्र को देवपुर भी कहा गया है।[8] यह स्थान कभी मुनि, योगियों और तपस्वियों की तपोभूमि थी। इसलिये यह देवपुरी नगरी मानी जाती थी। राजिम छत्तीसगढ़ अंचल का महत्वपूर्ण तीर्थ स्थल है। यहां श्राद्ध तर्पण, पर्व, स्नान व दान आदि विभिन्न धार्मिक कृत्यों के संपादन के लिये क्षेत्रीय जन यहां आते रहते हैं। राजिम में महानदी और पैरी नदी का संगम है, इस संगम को कुलेश्वर महामंदिर अभिलेख में श्री संगम कहा गया है। 'राजिम' शब्द राजीव लोचन का अपभ्रंश रूप है। राजिम और राजीवलोचन के अतिरिक्त इसे कमलक्षेत्र या पद्मपुर भी कहा गया है,पर राजिम नाम विशेष प्रचलित है। इसके नामकरण के कई रहस्य बताये जाते है जिसमें एक है राजीव या राजू नाम की एक तेलिन की कथा से जोड़ा गया है। राजीव नाम की एक तेलिन इस अमुक स्थान से होकर रोज तेल बेचने आया करती थी। एक दिन वह यहां विश्राम करने के लिये ठहर गई। उसने अपने तेल का टोकना एक पत्थर पर रख दिया फिर आगे बढ़ गई। उस दिन उसका तेल बिक जाने के बाद भी भरा रहा। उसने अपने घर वालों को जब यह बात बताई तो एकाएक किसी को विश्वास नहीं हुआ। बाद में उसकी माता ने भी तेल का कटोरा उसी पत्थर पर रखकर यह चमत्कार अजमाया। तब इस तेली परिवार ने उस पत्थर को अपने घर ले जाना चाहा। पत्थर को उलटाया गया, तब पता चला कि वह भगवान विष्णु की औंधी हुई मूर्ति थी। इसी मूर्ति के बारे में दुर्ग नरेशरत्नपुर सामंत वीरवरजयपाल को स्वप्न हुआ। तब उसने इस तेलिन से मूर्ति को लेकर एक विशाल मंदिर बनवाया। राजिव तेलिन ने उस मूर्ति को इस शर्त पर दी कि मंदिर के साथ उसका नाम जुड़ना चाहिये। शायद इसीलिये इस मंदिर का नाम राजीवलोचन पड़ा। मंदिर के अहाते में आज भी एक स्थल राजीवा के लिये सुरक्षित है। यह भगवान को देखते-देखते सती हो गई थी।[9]

एक अन्य कथानुसार राजीव तेलीन के पास काले पत्थर की मूर्ति थी। जगपाल ने राजीव तेलीन को सोना देकर मूर्ति प्राप्त कर राजीव लोचन नामक मंदिर बनवाया।[10] मंदिर के भीतर सती चौरा है, जिसका संबंध इसी स्त्री से बताया जाता है।[11]प्राचीन ग्रंथों के अनुसार, इसे 'पद्मक्षेत्र' की भी जो संज्ञादी गई है, वह भी धार्मिक भावना का ही द्योतक है। इसके अनुसार सृष्टि के प्रारंभ में

भगवान विष्णु के नाभि से कमल की एक पंखुड़ीपृथ्वी पर गिर पड़ी। इस कमल द्वारा आच्छादित भू-भाग कालांतर में 'पद्मक्षेत्र' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। छत्तीसगढ़ के अंचल में इस पद्म क्षेत्र की प्रदक्षिणा का विशेष धार्मिक महत्व है। इसे राजिम की पंचकोशी यात्रा के नाम से संबोधित किया जाता है।[12]वैदिक धर्म के समकालीन 'वैष्णव धर्म का प्रभाव' आने वाले युग में शासकों एवं उनके माध्यम से जनसामान्य को प्रभावित करता रहा। गुप्तवंशीय शासक वैष्णव थे। राजिम के राजीवलोचन मंदिर में विष्णु प्रतिमाओं की ही प्राचीन स्थापना है।[13]

राजीवलोचन मंदिर का अस्तित्व:-

राजिम स्थित राजीवलोचन मंदिर के संबंध में विद्वानों का भिन्न-भिन्न मत है। कुछ विद्वानों का मत है कि राजीवलोचन का अस्तित्व 8वीं-9वीं शताब्दीं के मध्य में है व कुछ विद्वानों का मत है कि राजा नल या पांडव वंश से इस मंदिर का संबंध है, क्योंकि इस संबंध में सोमवंशी पाण्डवों का ताम्रपत्र पाया गया है। कुछ विद्वान मंदिर के शिलालेख के अनुसार पृथ्वीराज विरूपराज के द्वारा इसे निर्मित मानते है। इसके अलावामहाकोशल की 12वीं सदी के इतिहास और हैहयवंशी राजाओं के राज्य विस्तार के संबंध में लिपिबद्ध प्राप्त हुए है, अतः इसका निर्माण हैहयवंशी राजाओं के द्वारा हुआ है।

इस मंदिर के भीतर बाई ओर दीवाल में दो शिलालेख है। पहला शिलालेख 8वीं या 9वीं शताब्दीं में उत्कीर्ण किया गया था। जिसके आधार पर इतिहासकारों ने इसे राजा बसंत राज से संबंधित बताया है जिसका निर्माण काल 8वीं या 9वीं शताब्दीं का बताया गया है।[14] इसकी चौथी पंक्ति में 'पांडव', छठी पंक्ति में सम्राट नल, सातवीं पंक्ति में 'विरूपराज' शब्द पढ़े गये है।[15]

दूसरे शिलालेख मेंमाघ शुक्ल 8 कलचुरि संवत् 696 दिन बुधवार का उल्लेख है। जिसमें बताया गया है कि जगपाल नामक रतनपुर के हैहयवंशीय राजा जाजल्लदेव के सेनानी उसके पुत्र रत्नदेव के राज्यकाल में तालहरि मंडल को पराजित किया। जगपाल का जन्म राजमाल कुल में हुआ था। जगपाल ने अपने पूर्वज के नाम पर राजमाल नामक नगर बसाया था जो बाद में 'राजम' या 'राजिम' हो गया।[16] जगपाल ने जगपालपुर (दुर्ग) भी बसाया था। इसका कार्यकाल 1090 से 1145 तक आंका जाता है। जगपालपुर का नाम कालांतर में दुर्ग इसलिये हो गया क्योंकि वहां शिवदुर्ग नामक किला था और वहीं नाम प्रचलित हो गया। राजीवलोचन मंदिर के पुजारी राजपूत वंश के है। इनके पास पांडुवंश के महाशिव तिवरदेव के ताम्रपत्र है जिन्हेंउन्होंने दक्षिण कोसल की तत्कालीन राजधानी श्रीपुर (सिरपुर) से जारी किया था। इस ताम्रपत्र के द्वारा पिपरीपड़क (पिपरौद) ग्राम मंदिर को अर्पित किया गया था।[17]

नल वंशी शासक भवदत्तवर्मन एक विस्तारवादी एवं पराक्रमी शासक था। इसका चौथा शिलालेख (सन् 700 ई.) राजिम के राजीवलोचन मंदिर में लगा हुआ है।[18] विलासतुंग नल-वंश का एक महत्वपूर्ण शासक था। संभवतः वह पाण्डुवंशीय महाशिवगुप्त बालार्जुन का समकालीन था। राजिम का अभिलेख इसी काल का है। उसने राजिम में राजीवलोचन मंदिर का निर्माण करवाया। महाशिवगुप्त बालार्जुन के काल में सिरपुर के लक्ष्मण मंदिर का अनुकरण कर राजिम का मंदिरबनवाया गया।19विलासतुंग के राजिम शिलालेख से उसके पिताविरूपाक्ष और पितामह पृथ्वीराज के विषय में ज्ञान प्राप्त होता है। राजिम से प्राप्त विलासतुंग के प्रस्तर अभिलेख के अध्ययन एवं पुरालिपीय प्रमाणों के आधार पर विलासतुंग की राज्यावधि 600-700 ई. रखी जा सकती है। विलासतुंग विष्णु उपासक था। राजिम का प्रसिद्ध राजीवलोचन मंदिर विलासतुंग द्वारा ही बनवाया गया था। इसका वर्णन राजिम शिलालेख में मिलता है। इसके समय में मंडप द्वार, मंदिर के मण्डप और कुलिकाओं का निर्माण हुआ था। नलवंशियों का प्रभाव महानदी क्षेत्र तक विस्तृत था जिसका प्रमाण राजिम के राजीव लोचन मंदिर के निर्माण से प्रतीत होता है। पाण्डुवंशीय शासक महाशिव तीवरदेव के तीन ताम्रपत्र में से एक राजिम से प्राप्त हुआ है, जिससे पता चलता है कि पाण्डुवंशीयों का भी इस क्षेत्र में प्रभाव था।[20]राजीवलोचन मंदिर के महामण्डप की पार्श्वभित्ति पर कलचुरि संवत् 896 (अर्थात् 1145 ई.) का एक शिलालेख मिला है उसे रतनपुर के कलचुरि नरेशों के अधीनस्थ सामंत जगपालदेव का उत्कीर्ण बताया गया है। इस अभिलेख में जगपाल देव के वंश का नाम 'राजमाल' उल्लिखित है। अंग्रेज इतिहासकार ए. कनिंघम ने 'राजमाल' से 'राजिम' नामकरण भी संभव प्रतीत होना बताया है। अधिकांश विद्वान 'राजिम' को 'राजीव' का विकृत रूप मानते है।[21] पृथ्वीदेव द्वितीय का राजिम से अभिलेख प्राप्त हुआ है।[22] राजिम अभिलेख से पता चलता है कि पृथ्वीदेव द्वितीय के जगपाल नामक सेनापति ने राजिम स्थित राजीवलोचन मंदिर का जीर्णोद्धार कराया था।[23]

राजिम स्थित राजीवलोचन मंदिर वास्तुकला की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। छत्तीसगढ़ में सोमवंश के उत्तराधिकार के रूप में नलवंशी विलासतुंग हुआ। यह अपने पूर्ववर्ती सोमवंश का राजनीतिक उत्तराधिकारी ही नहीं अपितु उसकी समस्त सांस्कृतिक परिलब्धियों का भी उत्तराधिकारी था। राजिम स्थित राजीवलोचन मंदिर का शिलालेख से उनके द्वारा भगवान विष्णु के भव्य मंदिर बनवाये जाने का उल्लेख मिलता है। यह मंदिर वर्तमान छत्तीसगढ़ क्षेत्रांतर्गत प्राचीन मंदिर वास्तुकला के विकास क्रम के एक सोपान विशेष के शैलीगत विशेषताओं को प्रस्तुत करने वाला वास्तुरूप है। इसकी विषयगत संबद्धता यहां के लोगों की धार्मिक आस्था का द्योतक है। इसके गर्भगृह में प्रतिष्ठित देवता विशेष (विष्णु) के श्री विग्रह में केंद्रित भावना यहां के सांस्कृतिक जीवन की अविछिन्न धारा से संबद्ध है। सिरपुर के लक्ष्मण देऊल की भांति राजीवलोचन मंदिर की भू-विन्यास योजना में महामण्डप, अंतराल और गर्भगृह तीन अंग है। इसी तरह उत्सेध विन्यास में भी दोनों निर्मितियों को ऊंची जगती पर अवस्थित पाते है।[24]

तुलनात्मक आधार पर राजीवलोचन मंदिर के निर्माण का प्रथम चरण तिवरदेव के शासनकाल से संबंधित किया जा सकता है। राजीवलोचन मंदिर के प्रांगण में 'पश्चिमी तोरण' महाशिवगुप्त बालार्जुन के युग का प्रतीत होता है। कला की दृष्टि से राजीवलोचन मंदिर की मूर्तियों की सज्जा सिरपुर से अधिक विकसित है। कला शैली में परिष्कार की प्रवृत्ति में अलंकरण योजना सर्वप्रथम तिवरदेव के समय में राजिम में स्पष्ट हुई। तदनंतर सिरपुर से होकर रचनाक्रम पुनः राजिम तक लौट आया।दक्षिण कोसल की संक्रमणकालीन कला व्याख्या के संदर्भ में तोरणों के अतिरिक्त अन्य सामग्री भी उल्लेखनीय है। यह कला सामग्री मुख्यतः दो विधाओं से संबंधित है। एक विधा के अंतर्गतपटो पर उत्कीर्ण विभिन्न देवी-देवताओं की आकृतियां है। ये राजिम (राजीवलोचन तथा रामचंद्र मंदिर), खरोद व धमतरी से प्राप्त है। दसरी ओर सिरपुर की स्वतंत्र मूर्तियां तथा राजीवलोचन मंदिर के प्रांगण में कोणकों पर बनी देव कुलिकाओं में स्थापित विष्णु की अवतार मूर्तियां है।[25]

राजीवलोचन का मंदिर पंचायतन शैली का है। मुख्य मंदिर विस्तृत ऊँचे चौतरे पर बनाया गया है। उसके चारों ओर चार देवलिकायें अर्थात् छोटे मंदिर बनाये गये है। मुख्य मंदिर के तीन भाग है। मंडप और दक्षिण-पश्चिम ओर के कोनो से सीढ़ियां बनाई गई है जिन पर चढ़कर मंदिर में प्रवेश किया जाता है। मंडप के बीचों-बीच स्तंभों की दो पंक्तियां है। प्रत्येक पंक्ति में छः स्तंभ है उसी प्रकारमंडप की दोनों दीवालों में छः छोटेस्तंभ की पंक्तियां है। स्तंभों और स्तंभिकाओं (छोटे स्तंभ) की बनावट में भेद है जिससे यह अनुमान किया जा सकता है कि इन दोनों का निर्माणकाल अलग-अलग है। बीच के स्तंभवर्गाकार है। इनके निचले भाग सादे है किंतु ऊपर के भाग अलंकृत है जबकि बाजू की स्तम्भिकाओं पर ऊँची-ऊँची प्रतिमायें बनाई गई है। ये प्रतिमायें गंगा, यमुना, वराह, नृसिंह, सूर्य, दुर्गा आदि की है। गर्भगृह में भगवान विष्णु की चतुर्भुज प्रतिमा है। वे अपने चारोंहाथ में क्रमशः गदा, चक्र, शंख और पद्म धारण किये हुये है।26 भगवान विष्णु की यह प्रतिमा 8वीं से 10वीं शताब्दीं के मध्य निर्मित है। जब माघ पूर्णिमा में जगन्नाथ की यात्रा पर जाते है तो यात्री यहां पर अनिवार्य रूप से इसका दर्शन करते हुये जाते है।[27] राजीवलोचन मंदिर को छत्तीसगढ़ के अब तक के ज्ञात सभी मंदिरों में प्राचीनतम् माने जाने में कोई आपत्ति नहीं होती यद्यपि पश्चात्वर्ती काल में इस मंदिर का अनेक बार जीर्णोद्धार होने से इसमें अनेक परिवर्तन और परिवर्द्धन हुये है और अब वह मूल रूप में नहीं है। इस मंदिर के भीतर बायें हाथ की ओर दीवाल में दो शिलालेख है। इनमें से एक बहुत प्राचीन है और उसके अक्षर क्षतिग्रस्त हो गये है। दूसरा शिलालेख कम प्राचीन प्रतीत होता है।[28]

राजीव लोचन मंदिर के अतिरिक्त यहां कुलेश्वर महादेव, राजेश्वर मंदिर, जगन्नाथ मंदिर, पंचेश्वर महादेव मंदिर, भूलेश्वर महादेव मंदिर, नरसिंह मंदिर, बद्रीनाथ मंदिर, वामनवराह मंदिर, राजिम तेलीन का मंदिर, दानेश्वर मंदिर, रामचंद्र मंदिर, सोमेश्वर महादेव मंदिर, शीतला मंदिर प्रमुख दर्शनीय मंदिर है जो अपनी वास्तुकला का परिचय देते है।[29] यहां के पांच तीर्थ स्थल प्रसिद्ध है जिन्हें हम पंचकोशी के नाम से जानते है- 1. पटेश्वर, 2. चम्पेश्वर, 3. फिंगेश्वर, 4. बम्हनेश्वर, 5. कोपेश्वर।[30]

कुलेश्वर मंदिर का निर्माण 14वीं-15वीं सदी में हुआ था। इसका प्रमाण मंदिर में लगे शिलालेख में होता है।31 शिवजी का यह मंदिर महानदी के गर्भ में संगम पर वर्षो से खड़ा हुआ है। इसका शिल्प अभूतपूर्व है। इसमें एक शिलालेख भी है जिसका अधिकांश भाव पढ़ा नहीं जा सकता। केवल पांचवीं पंक्ति में 'श्री संगम' शब्द पढ़े गये है। लिपि से अनुमान होता है कि इसका निर्माण 9वीं शताब्दीं में हुआ होगा।[32] राजिम के सोमेश्वर मंदिर के प्रांगण में पार्श्वनाथ की एक प्रतिमा मिली है।[33] पृथ्वीदेव द्वितीय के राजिम शिलालेख कल्चुरि संवत् 896 में सामंत जगतपाल द्वारा राम मंदिर निर्माण कराये जाने का उल्लेख मिलता है।[34] राजिम के रामचंद्र मंदिर में प्रयुक्त स्थापत्य खंड और राजीव लोचन मंदिर, छत्तीसगढ़ के आरंभिक वास्तु की झलक युक्त है, जो नलवंशी वास्तुकला से संबंधित माने जाते है। नल वंश की कला पर भौगोलिक और राजनीतिक कारणों से वाकाटक संपर्को का प्रभाव रहा है।[35] गुप्त तथा गुप्तोत्तर काल में मध्यप्रदेश तथा भारत वर्ष में ''शंख लिपि'' का प्रादुर्भाव हुआ था।इस लिपि को पढ़ना असाध्य है। राजिम में शंख लिपि में उत्कीर्ण लेख प्राप्त होते है।[36]

राजिम माघी पुन्नी मेलाः-

सभ्यता, संस्कृति और कला का अद्भुत समन्वय राजिम में देखने को मिलता है। सोंढूर, पैरी और महानदी नदियों के त्रिवेणी संगम तट पर बसा राजिम प्राचीन काल से छत्तीसगढ़ का एक प्रमुख तीर्थस्थल है। राजिम को मंदिरों की महानगरी कहा जाता है। मान्यता है कि जगन्नाथपुरी की यात्रा तब तक संपूर्ण नहीं होती जब तक यात्री राजिम की यात्रा नहीं कर लेता। यह जनपदीय लोक विश्वास इसे साक्षी तीर्थ के रूप में प्रतिष्ठित करता है। वैदिक काल से संगम स्थल को पवित्र माना जाता है। श्राद्ध, तर्पण, पर्व स्नान, दान आदि धार्मिक कार्यो के लिए लोग इस संगम को प्रयाग-संगम के समान ही पवित्र मानते है। इनका विश्वास है कि यहां स्नान करने मात्र से मनुष्य के समस्त कल्मषनष्ट हो जाते है तथा मृत्युपरांत वह विष्णुलोक को प्राप्त करता है।लोकमान्यता में मृतककर्म से संबद्ध शास्त्र अनुमोदित समस्त क्रियाकर्म के संपादन हेतु राजिम संगम क्षेत्र को गया, काशी, प्रयागराज, हरिद्वार के ही समान मुक्ति प्रदाता तीर्थ क्षेत्र स्वीकार किया जाता है। इस लोकमान्यता की पृष्ठभूमि में राजिम से संबंधित ऐतिहासिक महत्व की निम्नलिखित दो अवधारणाएं कारक आधार रही है। महाभारत में कोसल देश में स्थित जिनतीर्थो का उल्लेख है उसमें आगणित बदरी तीर्थ राजिम ही है। प्राचीन साहित्य में तीर्थ कल्प अंतर्गत जहां कहीं भी बदरीधाम का विवरण है और तीर्थ महत्व की चर्चा है, उसके अनुसार बदरी क्षेत्र में जिस किसी की मृत्यु होती है उसे मुक्ति प्राप्त हो जाती है। इसी तरह कोई व्यक्ति बदरी तीर्थ स्थित

ब्रह्मकपाली में अपने जिस किसी पितृ के नाम से पिण्डदान करता है, उस पितृ के नाम से भविष्य में पुनः पिण्डदान नहीं किया जाता। इसका कारण यह विश्वास है कि जिस किसी पितृ को बदरी क्षेत्र अंतर्गत ब्रह्मकपाली में उसके किसी वंशधर द्वारा पिण्डदान दिया जाता है, उसकी हमेशा-हमेशा के लिए मुक्ति हो जाती है।यह जन्म-शरण के चक्र को भेदकर बदरीनाथ में विलीन हो जाता है। यह मान्यता ही बदरी तीर्थ में पिण्डदान की परंपरा का प्रमुख आधार रहा है।दूसरी अवधारणा के अनुसार सुवर्णरेखा, ऋषिकुल्या और महानदी अर्थात् पैरी, सोंढूर और महानदी के संगम को केंद्र मानकर राजिम के पंचकोशी से सिहावा तक फैला भू-भाग पुरूषोत्तम क्षेत्र है। पुरूषोत्तम क्षेत्र के केंद्र में स्थित राजिम, कुलेश्वर और लोमश ऋषि आश्रम क्षेत्र से ब्रह्मचर्य आश्रम तक चित्रोत्पला महानदी में मरने वाले जीव को गोलोक की प्राप्ति होती है तथा यहां जिस किसी पितृ को पिण्डदान प्रदान किया जाता है उसकी जन्म-मरण से मुक्ति हो जाती है और वह पितृदेव बैकुण्ठ में अक्षय गति प्राप्त करते है।

राजिम में प्रतिवर्ष माघ पूर्णिमा से महाशिवरात्रि तक धार्मिक मेले के आयोजन की परंपरा अत्यंत प्राचीन समय से रही है। छत्तीसगढ़ राज्य के अस्तित्व में आने के बाद सन् 2005 की माघ पूर्णिमा से महाशिवरात्रि की अवधि तक आयोजित पर्व को राज्य सरकार ने कुंभ सदृश्य आयोजन का स्वरूप दिया है। इस आयोजन में देश के भिन्न-भिन्न हिस्सों से संतों का आगमन हुआ। इस सफलता से प्रेरित होकर राज्य शासन ने देश के विभिन्न अखाड़ों, अलग-अलग पंथों के साधुओं के संगठनों और उनके प्रमुखों, महामंडलेश्वरों, महंतों से संपर्क कर उन सबकी सहमति प्राप्त की और 2006 से राजिम का यह सर्वाधिक प्रसिद्ध धार्मिक मेला 'राजिम कुंभ-महोत्सव' के रूप में प्रतिवर्ष आयोजित होने लगा है। इस कुंभ के आयोजन से राजिम के धार्मिक महत्व को नया आयाम प्राप्त हुआ है। इसके साथ ही छत्तीसगढ़ की आध्यात्मिक परंपरा की ओर पूरे देश के धर्म शास्त्रियों और धर्मप्राण व्यक्तियों का आकर्षण बढ़ा है। समग्रतः राजिम कुंभ छत्तीसगढ़ के सांस्कृतिक वैभव का एक नया अध्याय है। हाल ही में छत्तीसगढ़ सरकार ने राजिम कुभ(कल्प) को राजिम पुन्नी मेला का नाम दिया है।[37] यद्यपि यहां पर प्राचीन काल से ही माघ पुन्नी का पर्व मनाया जाता रहा है किंतु इसे वर्तमान रूपदेने का कार्य 1960 के दशक में यहां के मालगुजार कोदूराम वर्मा के साथ रामनाथ उपाध्याय एवं रामनारायण उपाध्याय ने किया। उन्होंने एक विराट यज्ञ का आयोजन किया था जिससे इस तीर्थ का महत्व प्रचारित हुआ और धीरे-धीरे यह विशाल मेले का रूप धारण करने लगा जहां देश के बड़े-बड़े संत और महात्मा पधारने लगे और आज इस तीर्थ की ख्याति पूरे भारत में फैल चुकी है।[38]

निष्कर्षः-छत्तीसगढ़ के सांस्कृतिक जनजीवन से संबद्ध इस अंचल का प्रयाग राजिम अपनी अनेक विशिष्टताओं से युक्त है। प्राचीन काल से वर्तमान युग तक निरंतर प्रवाहित चित्रोत्पला की धारा की तरह इसका ऐतिहासिक, सांस्कृतिक व आध्यात्मिक महत्व आज भी विद्यमान है। यहां भगवान राम अपने भाई शत्रुघ्न को मृत्यु से बचाने के लिये पहुंचे थे। इस कथा से राजिम के धार्मिक महत्व की जानकारी प्राप्त होती है क्योकि यहां पर तीनों देव ब्रह्मा, विष्णु व महेश अपने मूल रूप में विद्यमान है। राजिम तीर्थ का धार्मिक दर्शन के संबंध में एक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि यहां पर शिव की पूजाहोने के बाद भी यह वैष्णव तीर्थ के नाम से प्रसिद्ध है। पुराणों में इसे पुरूषोत्तम क्षेत्र कहा गया है। इस समय में भगवान शिव की अराधना महाशिवरात्रि को जिस रूप में होती है वह विशुद्ध शिवत्व के रूप में ना होकर हरिहर के रूप में होती है। हरिहर अर्थात् विष्णु और शिव दोनों का मिश्रित रूप है। इसीलिये स्कंध पुराण में लिखा है कि पुरूषोत्तम क्षेत्र में शैव और वैष्णव के परस्पर भेद समाप्त होकर समान्वित हो जाते है। हिन्दू धर्म के दो बड़ी शाखायें राजिम में आकर एक हो जाते है। छत्तीसगढ़ की यह पावनभूमि धार्मिक समरसता की पहचान है। समय के साथ युग बदलता रहा पर यहां की मंदिर, मूर्तियां, स्थापत्य कला आज भी लोगों के लिये जिज्ञासा और आकर्षण के केंद्र बने हुये है।

संदर्भग्रंथः-

1. कमलेश, संतराम, छत्तीसगढ़ की भौगोलिक समीक्षा, वसुन्धरा प्रकाशन, दाउदपुर, गोरखपुर, 2002, पृ. 164.
2. गुप्त, मदनलाल, छत्तीसगढ़ दिग्दर्शन, श्री प्रकाशन, एच. 24/7 सिविल लाइन, कसारीडीह, दुर्ग,1996, पृ. 272.
3. झा, विभाषकुमार एव ्नैयर, सौम्या, छत्तीसगढ़ समग्र, छत्तीसगढ़ राज्य हिंदी ग्रंथ अकादमी, रायपुर, 2013, पृ. 275.
4. साहू, बिहारीलाल, प्रहेलिकायें और छत्तीसगढ़ी संस्कृति, भावना प्रकाशन, पटपड़गंज,दिल्ली,1997,पृ. 183.
5. यदु, मन्नूलाल एवं वर्मा, केशरीलाल, छत्तीसगढ़ की अस्मिता, छत्तीसगढ़ की अस्मिता प्रतिष्ठान, कृष्ण सखा प्रेस, पुरानी बस्ती, रायपुर, 2002, पृ. 93.
6. अलंग, संजय, छत्तीसगढ़: इतिहास और संस्कृति, अनामिकाप्रकाशन, तुलारामबाग, इलाहाबाद,2018, पृ. 128.
7. झा, विभाष कुमार एवं नैयर, सौम्या, पूर्वोक्त, पृ. 275.
8. कनिंघम, आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, खण्ड 17, पृ. 16-17.
9. गुप्त, मदनलाल, पूर्वोक्त, पृ. 269-270.
10. अलंग, संजय, पूर्वोक्त, पृ. 128.
11. साहू, बिहारीलाल, पूर्वोक्त, पृ. 183.
12. गुप्त, मदनलाल, पूर्वोक्त, पृ. 272.
13. शर्मा, अरविंद, छत्तीसगढ़ का राजनीतिक इतिहास, अरपा पॉकेट बुक्स, बिलासपुर,1999, पृ. 16.
14. गुप्त, मदनलाल, पूर्वोक्त, पृ. 270-271.
15. गुप्त, प्यारेलाल, प्राचीन छत्तीसगढ़, पं. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय, रायपुर, म.प्र., पृ. 161.
16. गुप्त, मदनलाल, पूर्वोक्त, पृ. 271.
17. गुप्त, प्यारेलाल, पूर्वोक्त, पृ. 162.

18. शर्मा, अरविंद, पूर्वोक्त, पृ. 7.
19. वर्मा, भगवान सिंह, छत्तीसगढ़ का इतिहास, मध्यप्रदेश हिंदी ग्रन्थ अकादमी, बानगंगा, भोपाल, म.प्र., 2001, पृ. 27.
20. अमरोहित, गीतेश, छत्तीसगढ़ का इतिहास, सरस्वती बुक्स, भिलाई, दुर्ग, 2022, पृ. 20-21.
21. गुप्त, मदनलाल, पूर्वोक्त, पृ. 272.
22. बेहार, रामकुमार, छत्तीसगढ़ का इतिहास, छत्तीसगढ़ राज्य हिंदी ग्रंथ अकादमी, रायपुर,छ.ग.,2009, पृ. 93.
23. शुक्ल, अशोक, छत्तीसगढ़ का राजनैतिक इतिहास एवं राष्ट्रीय आंदोलन, युगबोध, सदरबाजार, रायपुर, पृ. 12.
24. मिश्र, रमेन्द्रनाथ एव झा, लक्ष्मीधर, छत्तीसगढ़ का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, सेन्ट्रल बुक हाउस,
सदर बाजार, रायपुर, 1998, पृ. 178, 182.
25. त्रिवेदी, सुशील, युग-युगीन छत्तीसगढ़, वैभव प्रकाशन, अमीनपारा चौक, पुरानीबस्ती, रायपुर, छ.ग., 2016, पृ. 76.
26. गुप्त, प्यारेलाल, पूर्वोक्त, पृ. 162.
27. वर्मा, एल. एन., छत्तीसगढ़ भौगोलिक अध्ययन, छत्तीसगढ़ राज्य हिंदी ग्रंथ अकादमी, रायपुर, छ.ग.,2018, पृ. 259.
28. शुक्ल, हीरालाल, छत्तीसगढ़ ज्ञानकोष, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी भोपाल, म.प्र., 2003, पृ. 320.
29. अलंग, संजय, पूर्वोक्त, पृ. 128.
30. वर्मा, एल. एन., पूर्वोक्त, पृ. 258.
31. शुक्ला, सुरेश चंद्र एवं शुक्ला, अर्चना, शिक्षादूत ग्रन्थागार प्रकाशन, समता कॉलोनी, रायपुर, 2003, पृ. 230.
32. गुप्त, प्यारेलाल, पूर्वोक्त, पृ. 163.
33. अमरोहित, गीतेश, छत्तीसगढ़ कला एवं संस्कृति,सरस्वती बुक्स, भिलाई, दुर्ग, छ.ग., 2021, पृ. 269.
34. मिश्र, रमेन्द्रनाथ एवं झा, लक्ष्मीधर, पूर्वोक्त, पृ. 41.
35. त्रिवेदी, सुशील, पूर्वोक्त, पृ. 66.
36. मिश्र, रमेन्द्रनाथ एवं झा, लक्ष्मीधर, पूर्वोक्त, पृ. 16.
37. त्रिवेदी, सुशील, पूर्वोक्त, पृ. 170-172.
38. अग्रवाल, किशोर कुमार, लेख, सृष्टि के पूर्व का तीर्थ राजिम, संपादक- पटनायक,अशोक कुमार, खुटे,डी.एन., एवं नुरूटी, बंशो, रिविजिटिंग हिस्ट्री, शिवालिक प्रकाशन, दिल्ली, 2023, पृ. 231.

झारखंड आंदोलन के अधूरे सपने...

कनक राज पाठक
शोधार्थी
जनजातीय एवं क्षेत्रीय भाषा विभाग
रांची विश्वविद्यालय, रांची, झारखण्ड।

सैकड़ों बार आंदोलन, दर्जनों गोली कांड में हजारों लोगों की शहादत और लंबे उतार-चढ़ाव के बाद अंततः 14 नवंबर 2000 को झारखंड राज्य अस्तित्व में आया. राजनैतिक उथल-पुथल के बीच 14-15 नवंबर की आधी रात को बाबूलाल मरांडी ने प्रथम मुख्यमंत्री के रूप में शपथ ली. झारखंड को सींचने संवारने में सिदो-कानो, चांद-भैरव, नीलांबर-पीतांबर, बिरसा मुंडा, जयपाल सिंह मुंडा सरीखे सैकड़ों लोगों ने अपना योगदान दिया है. जैसा हम जानते हैं कि झारखंड की पहचान आदिवासी, कला और संस्कृति है. झारखंड को सींचने-संवारने और इस इसे पल्लवित-पुष्पित करने में यहां के संस्कृतिकर्मी, आंदोलनकारी और बुद्धिजीवियों समेत समाज के सभी वर्गों का हाथ है. झारखंड की कला, सभ्यता और संस्कृति दूसरे राज्यों से अलग है. प्रचीन काल से ही यहां के लोगों में अबुआ दिसूम अबुआ राज (अपना देश- अपना राज) की चाहत थी. इस झारखंडी स्वराज का सपना भगवान बिरसा मुंडा ने देखा था. महाजनी लूट के खिलाफ अंग्रेजों, सूदखोरों, दिकुओं और महाजनों से यहां के लोगों ने लंबी लड़ाई लड़ी है. 1912 में पश्चिम बंगाल से बिहार के बंटवारे के बाद अलग झारखंड की मांग और जोर पकड़ती चली गई. सन 1935 में बिहार और उड़ीसा से बंटवारे के बाद अलग झारखंड राज्य की मांग और तेज हो गई. अब इस मांग की अनुगूंज राष्ट्रीय फलक पर सुनाई देने लगी. गाहे-बगाहे इस मांग को कभी हवा दी जाती थी तो कभी दबा दिया जाता था. इस स्थिति को देखते हुए मरांग गोमके जयपाल सिंह मुंडा को कहना पड़ा कि "बिहार प्रेस जहां एक तरफ आदिवासी महासभा के समाचारों को दबा देता है, वहीं सनातन आदिवासी सभा के समाचारों को न केवल अनावश्यक महत्व देता है, बल्कि अपनी ओर से समाचार गढ़ लेता है". यह वक्तव्य जयपाल सिंह मुंडा ने जुलाई 1939 में दिया. प्रभात खबर के वरिष्ठ पत्रकार अनुज कुमार सिन्हा अपनी पुस्तक "झारखंड आंदोलन का दस्तावेज" में लिखते हैं कि 30-40 साल पहले पत्रकारिता अलग थी. वैसे भी झारखंड आंदोलन की खबरों को अखबार में कम जगह मिलती थी. इसलिए पुलिस गोलीकांड या अन्य जुल्म की रिपोर्ट अखबारों में कम ही दिखती थी. राज्य के कई हिस्सों में अखबार तो निकलते थे, लेकिन उसमें झारखंड आंदोलन की खबरें कम छपती थी. एक दो छोटे अखबार थे जो, जिन्होंने इस मामले को जिंदा रखा था. मीडिया ने भी 1970-80 के दौर में झारखंड आंदोलन की खबरों के साथ न्याय नहीं किया. यही कारण है कि राज्य का एक बड़ा हिस्सा यह जान नहीं पाया कि आंदोलन के दौरान क्या-क्या हुआ था. अभी भी हालात बहुत नहीं बदले हैं. लोगों को इस संबंध में बहुत कम जानकारी है.

"झारखंड की समर गाथा" पुस्तक के लेखक, आंदोलनकारी और जमशेदपुर लोकसभा क्षेत्र के पूर्व सांसद शैलेंद्र महतो का कहना है कि झारखंड के मुद्दे पर पत्रकारों और मीडिया मालिकों का रुख शुरू-शुरू में उदासीन था. धीरे-धीरे वह उपहास और कट्टर विरोध में बदल गया. एक लंबा कालखंड गुजरने के बाद पत्रकार-बंधु और मीडिया मालिक पक्ष में आने लगे. वह कहते हैं कि उन दिनों के तमाम पत्रकारों का हार्दिक अभिनंदन है, जिनकी कलम से निकले शब्दों ने अंततः झारखंड निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई. कई बार प्रजातंत्र के दो स्तंभ